सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

विविध प्रकारके तप और दानोंका फल

युधिष्ठिर उवाच

मुह्यामीव निशम्याद्य चिन्तयानः पुनः पुनः।
हीनां पार्थिवसंघातैः श्रीमद्भिः पृथिवीमिमाम्॥ १॥

युधिष्ठिरने कहा—पितामह! इस पृथ्वीको जब मैं उन सम्पतिशाली नरेशोंसे हीन देखता हूँ तब भारी चिन्तामें पड़कर बारंबार मूर्च्छित-सा होने लगता हूँ॥ १॥

प्राप्य राज्यानि शतशो महीं जित्वाथ भारत।
कोटिशः पुरुषान् हत्वा परितप्ये पितामह॥ २॥

भरतनन्दन! पितामह! यद्यपि मैंने इस पृथ्वीको जीतकर सैकड़ों देशोंके राज्योंपर अधिकार पाया है तथापि इसके लिये जो करोड़ों पुरुषोंकी हत्या करनी पड़ी है, उसके कारण मेरे मनमें बड़ा संताप हो रहा है॥

का नु तासां वरस्त्रीणां समवस्था भविष्यति।
या हीनाः पतिभिः पुत्रैर्मातुलैर्भ्रातृभिस्तथा॥ ३॥

हाय! उन बेचारी सुन्दरी स्त्रियोंकी क्या दशा होगी, जो आज अपने पति, पुत्र, भाई और मामा आदि सम्बन्धियोंसे सदाके लिये बिछुड़ गयी हैं?॥ ३॥

वयं हि तान् कुरून् हत्वा ज्ञातींश्च सुहृदोऽपि वा।
अवाक्शीर्षाः पतिष्यामो नरके नात्र संशयः॥ ४॥

हमलोग अपने ही कुटुम्बीजन कौरवों तथा अन्य सुहृदोंका वध करके नीचे मुँह किये नरकमें गिरेंगे, इसमें संशय नहीं है॥ ४॥

शरीरं योक्तुमिच्छामि तपसोग्रेण भारत।
उपदिष्टमिहेच्छामि तत्त्वतोऽहं विशाम्पते॥ ५॥

भारत! प्रजानाथ! मैं अपने शरीरको कठोर तपस्याके द्वारा सुखा डालना चाहता हूँ और इसके विषयमें आपका यथार्थ उपदेश ग्रहण करना चाहता हूँ॥ ५॥

वैशम्पायन उवाच

युधिष्ठिरस्य तद् वाक्यं श्रुत्वा भीष्मो महामनाः।
परीक्ष्य निपुणं बुद्ध्या युधिष्ठिरमभाषत॥ ६॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! युधिष्ठिरकायह कथन सुनकर महामनस्वी भीष्मजीने अपनी बुद्धिके द्वारा उसपर भलीभाँति विचार करके उनसे इस प्रकार कहा— ॥ ६॥

रहस्यमद्भुतं चैव शृणु वक्ष्यामि यत् त्वयि।
या गतिः प्राप्यते येन प्रेत्यभावे विशाम्पते॥ ७॥

'प्रजानाथ! मैं तुम्हें एक अद्भुत रहस्यकी बात बताता हूँ। मनुष्यको मरनेपर किस कर्मसे कौन-सी गति मिलती है—इस विषयको सुनो॥ ७॥

तपसा प्राप्यते स्वर्गस्तपसा प्राप्यते यशः।
आयुः प्रकर्षो भोगाश्च लभ्यन्ते तपसा विभो॥ ८॥

'प्रभो! तपस्यासे स्वर्ग मिलता है, तपस्यासे सुयशकी प्राप्ति होती है तथा तपस्यासे बड़ी आयु, ऊँचा पद और उत्तमोत्तम भोग प्राप्त होते हैं॥ ८॥

ज्ञानं विज्ञानमारोग्यं रूपं सम्पत् तथैव च।
सौभाग्यं चैव तपसा प्राप्यते भरतर्षभ॥ ९॥

'भरतश्रेष्ठ! ज्ञान, विज्ञान, आरोग्य, रूप, सम्पत्ति तथा सौभाग्य भी तपस्यासे प्राप्त होते हैं॥ ९॥

धनं प्राप्नोति तपसा मौनेनाज्ञां प्रयच्छति।
उपभोगांस्तु दानेन ब्रह्मचर्येण जीवितम्॥ १०॥

'मनुष्य तप करनेसे धन पाता है। मौन-व्रतके पालनसे दूसरोंपर हुक्म चलाता है। दानसे उपभोग और ब्रह्मचर्यके पालनसे दीर्घायु प्राप्त करता है॥ १०॥

अहिंसायाः फलं रूपं दीक्षाया जन्म वै कुले।
फलमूलाशिनां राज्यं स्वर्गः पर्णाशिनां भवेत्॥ ११॥

'अहिंसाका फल है रूप और दीक्षाका फल है उत्तम कुलमें जन्म। फल-मूल खाकर रहनेवालोंको राज्य और पत्ता चबाकर तप करनेवालोंको स्वर्गलोककी प्राप्ति होती है॥

पयोभक्षो दिवं याति दानेन द्रविणाधिकः।
गुरुशुश्रूषया विद्या नित्यश्राद्धेन संततिः॥ १२॥

'दूध पीकर रहनेवाला मनुष्य स्वर्गको जाता है और दान देनेसे वह अधिक धनवान् होता है। गुरुकी सेवा करनेसे विद्या और नित्य श्राद्ध करनेसे संतानकी प्राप्ति होती है॥ १२॥

गवाढ्यः शाकदीक्षाभिः स्वर्गमाहुस्तृणाशिनाम्।
स्त्रियस्त्रिषवणं स्नात्वा वायुं पीत्वा क्रतुं लभेत्॥ १३॥

'जो केवल साग खाकर रहनेका नियम लेता है वह गोधनसे सम्पन्न होता है। तृण खाकर रहनेवाले मनुष्योंको स्वर्गकी प्राप्ति होती है। तीनों कालमें स्नान करनेसे बहुतेरी स्त्रियोंकी प्राप्ति होती है और हवा पीकर रहनेसे मनुष्यको यज्ञका फल प्राप्त होता है॥

नित्यस्नायी भवेद् दक्षः संध्ये तु द्वे जपन् द्विजः।
मरुं साधयतो राजन् नाकपृष्ठमनाशके॥ १४॥

'राजन्! जो द्विज नित्य स्नान करके दोनों समय संध्योपासना और गायत्री-जप करता है वह चतुर होता है। मरुकी साधना—जलका परित्याग करनेवाले तथा निराहार रहनेवालेको स्वर्गलोककी प्राप्ति होती है॥

स्थण्डिले शयमानानां गृहाणि शयनानि च।
चीरवल्कलवासोभिर्वासांस्याभरणानि च॥ १५॥

'मिट्टीकी वेदी या चबूतरोंपर सोनेवालोंको घर और शय्याएँ प्राप्त होती हैं। चीर और वल्कलके वस्त्र पहननेसे उत्तमोत्तम वस्त्र और आभूषण प्राप्त होते हैं॥ १५॥

शय्यासनानि यानानि योगयुक्ते तपोधने।
अग्निप्रवेशे नियतं ब्रह्मलोके महीयते॥ १६॥

'योगयुक्त तपोधनको शय्या, आसन और वाहन प्राप्त होते हैं। नियमपूर्वक अग्निमें प्रवेश कर जानेपर जीवको ब्रह्मलोकमें सम्मान प्राप्त होता है॥ १६॥

रसानां प्रतिसंहारात् सौभाग्यमिह विन्दति।
आमिषप्रतिसंहारात् प्रजा ह्यायुष्मती भवेत्॥ १७॥

'रसोंका परित्याग करनेसे मनुष्य यहाँ सौभाग्यका भागी होता है। मांस-भक्षणका त्याग करनेसे दीर्घायु संतान उत्पन्न होती है॥ १७॥

उदवासं वसेद् यस्तु स नराधिपतिर्भवेत्।
सत्यवादी नरश्रेष्ठ दैवतैः सह मोदते॥ १८॥

'जो जलमें निवास करता है वह राजा होता है। नरश्रेष्ठ! सत्यवादी मनुष्य स्वर्गमें देवताओंके साथ आनन्द भोगता है॥ १८॥

कीर्तिर्भवति दानेन तथाऽऽरोग्यमहिंसया।
द्विजशुश्रूषया राज्यं द्विजत्वं चापि पुष्कलम्॥ १९॥

'दानसे यश, अहिंसासे आरोग्य तथा ब्राह्मणोंकी सेवासे राज्य एवं अतिशय ब्राह्मणत्वकी प्राप्ति होती है॥

पानीयस्य प्रदानेन कीर्तिर्भवति शाश्वती।
अन्नस्य तु प्रदानेन तृप्यन्ते कामभोगतः॥ २०॥

'जल दान करनेसे मनुष्यको अक्षय कीर्ति प्राप्त होती है, तथा अन्न-दान करनेसे मनुष्यको काम और भोगसे पूर्णतः तृप्ति मिलती है॥ २०॥

सान्त्वदः सर्वभूतानां सर्वशोकैर्विमुच्यते।
देवशुश्रूषया राज्यं दिव्यं रूपं नियच्छति॥ २१॥

'जो समस्त प्राणियोंको सान्त्वना देता है, वह सम्पूर्ण शोकोंसे मुक्त हो जाता है। देवताओंकी सेवासे राज्य और दिव्य रूप प्राप्त होते हैं॥ २१॥

दीपालोकप्रदानेन चक्षुष्मान् भवते नरः।
प्रेक्षणीयप्रदानेन स्मृतिं मेधां च विन्दति॥ २२॥

'मन्दिरमें दीपकका प्रकाश दान करनेसे मनुष्यका नेत्र नीरोग होता है। दर्शनीय वस्तुओंका दान करनेसे मनुष्य स्मरणशक्ति और मेधा प्राप्त कर लेता है॥ २२॥

गन्धमाल्यप्रदानेन कीर्तिर्भवति पुष्कला।
केशश्मश्रु धारयतामग्र्या भवति संततिः॥ २३॥

'गन्ध और पुष्प-माला दान करनेसे प्रचुर यशकी प्राप्ति होती है। सिरके बाल और दाढ़ी-मूँछ धारण करनेवालोंको श्रेष्ठ संतानकी प्राप्ति होती है॥ २३॥

उपवासं च दीक्षां च अभिषेकं च पार्थिव।

कृत्वा द्वादशवर्षाणि वीरस्थानाद् विशिष्यते॥ २४॥

'पृथ्वीनाथ! बारह वर्षोंतक सम्पूर्ण भोगोंका त्याग, दीक्षा (जप आदि नियमोंका ग्रहण) तथा तीनों समय स्नान करनेसे वीर पुरुषोंकी अपेक्षा भी श्रेष्ठ गति प्राप्ति होती है॥ २४॥

दासीदासमलङ्कारान् क्षेत्राणि च गृहाणि च।
ब्रह्मदेयां सुतां दत्त्वा प्राप्नोति मनुजर्षभ॥ २५॥

'नरश्रेष्ठ! जो अपनी पुत्रीका ब्राह्मविवाहकी विधिसे सुयोग्य वरको दान करता है, उसे दास-दासी, अलंकार, क्षेत्र और घर प्राप्त होते हैं॥ २५॥

क्रतुभिश्चोपवासैश्च त्रिदिवं याति भारत।
लभते च शिवं ज्ञानं फलपुष्पप्रदो नरः॥ २६॥

'भारत! यज्ञ और उपवास करनेसे मनुष्य स्वर्गलोकमें जाता है तथा फल-फूलका दान करनेवाला मानव कल्याणमय मोक्षस्वरूप ज्ञान प्राप्त कर लेता है॥ २६॥

सुवर्णश्रृंगैस्तु विराजितानां
गवां सहस्रस्य नरः प्रदानात्।
प्राप्नोति पुण्यं दिवि देवलोक-
मित्येवमाहुर्दिवि देवसंघाः॥ २७॥

'सोनेसे मढ़े हुए सींगोंद्वारा सुशोभित होनेवाली एक हजार गौओंका दान करनेसे मनुष्य स्वर्गमें पुण्यमय देवलोकको प्राप्त होता है—ऐसा स्वर्गवासी देववृन्द कहते हैं॥ २७॥

प्रयच्छते यः कपिलां सवत्सां
कांस्योपदोहां कनकाग्रश्रृंगीम्।
तैस्तैर्गुणैः कामदुहास्य भूत्वा
नरं प्रदातारमुपैति सा गौः॥ २८॥

'जिसके सींगोंके अग्रभागमें सोना मढ़ा हुआ हो, ऐसी गायका काँसके बने हुए दुग्धपात्र और बछड़ेसमेत जो दान करता है, उस पुरुषके पास वह गौ उन्हीं गुणोंसे युक्त कामधेनु होकर आती है॥ २८॥

यावन्ति रोमाणि भवन्ति धेन्वा-

स्तावत् कालं प्राप्य स गोप्रदानात् ।
पुत्रांश्च पौत्रांश्च कुलं च सर्व-
मासप्तमं तारयते परत्र॥ २९॥

'उस गौके शरीरमें जितने रोएँ हैं, उतने वर्षोंतक मनुष्य गोदानके पुण्यसे स्वर्गीय सुख भोगता है। इतना ही नहीं, वह गौ उसके पुत्र-पौत्र आदि सात पीढ़ियोंतक समस्त कुलका परलोकमें उद्धार कर देती है॥ २९॥

सदक्षिणां काञ्चनचारुश्रृंगीं
कांस्योपदोहां द्रविणोत्तरीयाम्।
धेनुं तिलानां ददतो द्विजाय
लोका वसूनां सुलभा भवन्ति॥ ३०॥

'जो मनुष्य सोनेके सुन्दर सींग बनवाकर और द्रव्यमय उत्तरीय देकर कांस्यमय दुग्धपात्र तथा दक्षिणासहित तिलकी धेनुका ब्राह्मणको दान करता है, उसे वसुओंके लोक सुलभ होते हैं॥ ३०॥

स्वकर्मभिर्मानवं संनिरुद्धं
तीव्रान्धकारे नरके पतन्तम्।
महार्णवे नौरिव वायुयुक्ता
दानं गवां तारयते परत्र॥ ३१॥

'जैसे महासागरके बीचमें पड़ी हुई नाव वायुका सहारा पाकर पार पहुँचा देती है, उसी प्रकार अपने कर्मोंसे बँधकर घोर अन्धकारमय नरकमें गिरते हुए मनुष्यको गोदान ही परलोकमें पार लगाता है॥ ३१॥

यो ब्रह्मदेयां तु ददाति कन्यां
भूमिप्रदानं च करोति विप्रे।
ददाति चान्नं विधिवच्च यश्च
स लोकमाप्नोति पुरंदरस्य॥ ३२॥

'जो मनुष्य ब्राह्मविधिसे अपनी कन्याका दान करता है, ब्राह्मणको भूमिदान देता है तथा विधिपूर्वक अन्नका दान करता है, उसे इन्द्रलोककी प्राप्ति होती है॥ ३२॥

नैवेशिकं सर्वगुणोपपन्नं

ददाति वै यस्तु नरो द्विजाय।
स्वाध्यायचारित्र्यगुणान्विताय
तस्यापि लोकाः कुरुषूत्तरेषु॥ ३३॥

'जो मनुष्य स्वाध्यायशील और सदाचारी ब्राह्मणको सर्वगुणसम्पन्न गृह और शय्या आदि गृहस्थीके सामान देता है, उसे उत्तर कुरुदेशमें निवास प्राप्त होता है॥

धुर्यप्रदानेन गवां तथा वै
लोकानवाप्नोति नरो वसूनाम्।
स्वर्गाय चाहुस्तु हिरण्यदानं
ततो विशिष्टं कनकप्रदानम्॥ ३४॥

'भार ढोनेमें समर्थ बैल और गायोंका दान करनेसे मनुष्यको वसुओंके लोक प्राप्त होते हैं। सुवर्णमय आभूषणोंका दान स्वर्गलोककी प्राप्ति करानेवाला बताया गया है और विशुद्ध पक्के सोनेका दान उससे भी उत्तम फल देता है॥ ३४॥

छत्रप्रदानेन गृहं वरिष्ठं
यानं तथोपानहसम्प्रदाने।
वस्त्रप्रदानेन फलं सुरूपं
गन्धप्रदानात् सुरभिर्नरः स्यात्॥ ३५॥

'छाता देनेसे उत्तम घर, जूता दान करनेसे सवारी, वस्त्र देनेसे सुन्दर रूप और गन्ध दान करनेसे सुगन्धित शरीरकी प्राप्ति होती है॥ ३५॥

पुष्पोपगं वाथ फलोपगं वा
यः पादपं स्पर्शयते द्विजाय।
सश्रीकमृद्धं बहुरत्नपूर्णं
लभत्ययत्नोपगतं गृहं वै॥ ३६॥

'जो ब्राह्मणको फल अथवा फूलोंसे भरे हुए वृक्षका दान करता है, वह अनायास ही नाना प्रकारके रत्नोंसे परिपूर्ण, धनसम्पन्न समृद्धिशाली घर प्राप्त कर लेता है॥ ३६॥

भक्ष्यान्नपानीयरसप्रदाता

सर्वान् समाप्नोति रसान् प्रकामम्।
प्रतिश्रयाच्छादनसम्प्रदाता
प्राप्नोति तान्येव न संशयोऽत्र॥ ३७॥

'अन्न, जल और रस प्रदान करनेवाला पुरुष इच्छानुसार सब प्रकारके रसोंको प्राप्त करता है तथा जो रहनेके लिये घर और ओढ़नेके लिये वस्त्र देता है, उसे भी इन्हीं वस्तुओंकी उपलब्धि होती है। इसमें संशय नहीं है॥ ३७॥

स्रग्धूपगन्धाननुलेपनानि
स्नानानि माल्यानि च मानवो यः।
दद्याद् द्विजेभ्यः स भवेदरोग-
स्तथाभिरूपश्च नरेन्द्र लोके॥ ३८॥

'नरेन्द्र! जो मनुष्य ब्राह्मणोंको फूलोंकी माला, धूप, चन्दन, उबटन, नहानेके लिये जल और पुष्प दान करता है, वह संसारमें नीरोग और सुन्दर रूपवाला होता है॥

बीजैरशून्यं शयनैरुपेतं
दद्याद् गृहं यः पुरुषो द्विजाय।
पुण्याभिरामं बहुरत्नपूर्णं
लभत्यधिष्ठानवरं स राजन्॥ ३९॥

'राजन्! जो पुरुष ब्राह्मणको अन्न और शय्यासे सम्पन्न गृह दान करता है, उसे अत्यन्त पवित्र, मनोहर और नाना प्रकारके रत्नोंसे भरा हुआ उत्तम घर प्राप्त होता है॥

सुगन्धचित्रास्तरणोपधानं
दद्यान्नरो यः शयनं द्विजाय।
रूपान्वितां पक्षवतीं मनोज्ञां
भार्यामयत्नोपगतां लभेत् सः॥ ४०॥

'जो मनुष्य ब्राह्मणको सुगन्धयुक्त विचित्र बिछौने और तकियेसे युक्त शय्याका दान करता है, वह बिना यत्नके ही उत्तम कुलमें उत्पन्न अथवा

सुन्दर केशपाशवाली, रूपवती एवं मनोहारिणी भार्या प्राप्त कर लेता है॥ ४०॥

पितामहस्यानवरो वीरशायी भवेन्नरः।
नाधिकं विद्यते यस्मादित्याहुः परमर्षयः॥ ४१॥

'संग्राममभूमिमें वीरशय्यापर शयन करनेवाला पुरुष ब्रह्माजीके समान हो जाता है। ब्रह्माजीसे बढ़कर कुछ भी नहीं है—ऐसा महर्षियोंका कथन है'॥ ४१॥

वैशम्पायन उवाच

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा प्रीतात्मा कुरुनन्दनः।
नाश्रमेऽरोचयद् वासं वीरमार्गाभिकाङ्क्षया॥ ४२॥

वैशम्पायनजी कहते हैं—जनमेजय! पितामहका यह वचन सुनकर युधिष्ठिरका मन प्रसन्न हो उठा। एवं वीरमार्गकी अभिलाषा उत्पन्न हो जानेके कारण उन्होंने आश्रममें निवास करनेकी इच्छाका त्याग कर दिया॥ ४२॥

ततो युधिष्ठिरः प्राह पाण्डवान् पुरुषर्षभ।
पितामहस्य यद् वाक्यं तद् वो रोचत्विति प्रभुः॥ ४३॥

पुरुषप्रवर! तब शक्तिशाली राजा युधिष्ठिरने पाण्डवोंसे कहा—'वीरमार्गके विषयमें पितामहका जो कथन है, उसीमें तुम सब लोगोंकी रुचि होनी चाहिये'॥

ततस्तु पाण्डवाः सर्वे द्रौपदी च यशस्विनी।
युधिष्ठिरस्य तद् वाक्यं बाढमित्यभ्यपूजयन्॥ ४४॥

तब समस्त पाण्डवों तथा यशस्विनी द्रौपदी देवीने 'बहुत अच्छा' कहकर युधिष्ठिरके उस वचनका आदर किया॥ ४४॥

इति श्रीमहाभारते अनुशासनपर्वणि दानधर्मपर्वणि
सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५७॥

इस प्रकार श्रीमहाभारत अनुशासनपर्वके अन्तर्गत दानधर्मपर्वमें सत्तावनवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ ५७॥